भारतीय संस्कृति

डॉ0 अजुंला राजवंशी
असि0 प्रो0
समाजशस्त्र विभाग
आर0जी0 पीजी कालिज, मेरठ

भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। मिस्र और मैसोपोटामिया–जिसमें बाबुल, एसीरिया और हित्ती आदि सम्मिलित हैं–की ही भाँति इसका इतिहास भी हजारों वर्ष का है। यही नहीं चीन सहित विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियों के समान भारतीय संस्कृति का अपना विशिष्ट स्थान रहा है, इसकी एक आकर्षक पहचान रही है। निश्चित ही इस पहचान का आधार भारतवासियों के वे आकर्षक संस्कार रहे हैं, जिन्हें हम प्रारम्भ से लेकर आज तक उनमें पाते हैं । इन्हीं संस्कारों के बल पर भारतीय संस्कृति समृद्ध होती रही है; समस्त विश्व को 'जियो और जीने दो' का सन्देश देती है और इस रूप में इसने दूसरी संस्कृतियों को बहुत पहले, बहुत पीछे छोड दिया था, यह वास्तविकता है।

संस्कृति का निर्माण संस्कार शब्द से हुआ है, जो एक क्रियाशील मानवीय प्रवृत्ति है; जिससे मानसिक धारणा का प्रकटीकरण होता है और दूसरों पर पडने वाले प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है। संस्कार, निश्चित रूप से, कोई ठहरती हुई वस्तु नहीं है। इसलिए इसके साथ सुधार, विकास अैर नियम आदि जैसी बातें जुडी होती हैं।

संस्कार दोनों अर्थात्, अच्छे और बुरे प्रकार के होते हैं। अच्छे संस्कारों के साथ नैतिकता और सदाचार के अतिरिक्त समन्वय और उक्त वर्णित बातें अर्थात, सुधार व विकासादि का जुडे होना आवश्यक है, जो इन बातों से रहित हैं, वे बुरे या कुसंस्कार होते है। किसी संस्कृति के निर्माण में अच्छे अथवा सुसंस्कारों का ही योगदान होता है, कुसंस्कारों का कदापि नहीं।

भारतीय संस्कृति को जानने व समझने के लिए पुस्तकीय प्रमाणित ज्ञान के साथ–साथ पुरातत्व विभाग द्वारा किया गया खुदाई कार्य भी काफी सहयोगी सिद्ध होता है। इसी आधार पर भारतीय संस्कृति को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है–

(1) प्रारम्भिक अवस्था /नवपाषण / प्रारम्भिक ताम्रपाषण काल।
(2) हडप्पा युग
(3) आर्योदय काल
(4) उत्तर वैदिक / मगध एवं मौर्य काल

प्रारम्भिक ताम्रपाषण काल में ज्यादातर भारतवासी कृषि कार्यों में संलग्न थे; वे पशुपालन करते थे। इन पशुओं में भेड–बकरी मुख्यतः सम्मिलित थे। भारतवासियों के घर कच्ची ईटों के थे, लेकिन वे कबीलों के रूप में रहते थे अर्थात, उनका जीवन स्थायित्व तथा सामूहिकता की परिधि में था। परस्पर सहयोग इसका आधार था, जो अन्ततः अहिंसा का चिह्न है।

यद्यपि इस समय भारतवासी मुख्य रू॰ से पाषाण यंत्रों का ही उपयोग करते थे, लेकिन निश्चित रूप से वे इस सन्दर्भ में विकास की दिशा में अग्रसर थे। उक्त काल तथा सिन्धु घाटी

की सभ्यता के मध्य समय के घोषित किये गए मृदभांडों और धातु के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सभ्यता के मध्य समय के घोषित किये गए मृदभांडों और धातु के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

पाँच हजार वर्ष पूर्व भारतवासियों में स्थायी तथा सामूहिक जीवन जीने, एक–दूसरे से सहयोग करने और विकास की दिशा में अग्रसर होने के संस्कार थे। ये संस्कार ही उनकी संस्कृति का निर्माण करते थे, आज हमसे उसका परिचय कराते हैं।

हडप्पाकालीन संस्कृति के विकास का प्रथम लक्षण योजनाबद्ध और व्यवस्थित ढंग से, वह भी उच्चस्तरीय निर्मित नगरों में देखा जा सकता है। मोहन–जो–दाडो दो भागों में विभक्त था। एक भाग में नगर के अधिकारी तथा दूसरे में आमजन रहते थे। आमजन के रहने वाला भाग आयताकार होता था जबकि अधिकारियों अथवा खासजन के रहने वाला भाग ईटों से निर्मित एक ऊंचे चबूतरे पर बने एक दुर्ग के समान होता था। प्राकृतिक आपदाओं, विशेष रूप से बाढ से यह चबूतरा संरक्षण प्रदान करता था। योजनाबद्ध रूप से मार्ग का निर्माण किया जाता था। पक्की तथा कच्ची दोनो प्रकार की ईंटों का प्रयोग किया गया था। तालाब के किनारे सुरक्षा की दृष्टि से अन्न भण्डार व बाजार के चबूतरे थे। उस काल में भी तीन मंजिलों तक भवन हुआ करते थे। अल्पपंत्रीय गणतंत्र व सत्ता पुरोहितों के हाथो में थी। इस काल में जनता अग्नि, जल तथा वृक्षों की उपासना करती थी। उच्चस्तरीय भाषा व लिपि उनके अपने राज्य से बाहर भी सम्पर्क को दर्शाती है। उस समय भी अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण बस्तियों में रहते हुए जौं, तिल, फलियों आदि की खेती करती थी। धान, कपास द्वारा उपज भी होती थी। बस्तियों के लोग अधिकांशतः नदियों के माध्यम से, नावों द्वारा फसलों को ढोकर घरों में लाते थे। हल जुताई का साधन थे और जैसा कि कहा है, भेड–बकरियां, गाय आदि के साथ ही कुत्ते पालते थे। मुर्गे रखे जाने के प्रमाण मिले हैं। धातु इनकी भी तांबा और कांसा थी, जिसे गलाने, ढालने और गढने में ये लोग दक्ष थे। अधिकांश या पूर्णतया, व्यापार नगरों से ही होता था, लेकिन जौहरीजन भी उपस्थित थे, जो सोने और चांदी से निर्मित मूल्यवान आभूषणों को संभ्रात नागरिकों को बेचते थे, उनका निर्यात करते थे।

उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग ग्यारह सौ किलोमीटर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग सौलह सौ किलोमीटर में फैली हडप्पपकालीन भारतीय संस्कृति अपने समय में महत्वपूर्ण, अनोखी तथा अद्वितीय थी, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। इस संस्कृति में स्पष्टः हम भारतीयों में पहले से अपेक्षाकृत कहीं अधिक विकसित 'सामूहिकता' और 'सहयोग' के संस्कार तो पाते ही हैं, निम्नलिखित अन्य जो संस्कार देखते हैं तथा जिनसे उनकी संस्कृति की, उक्त विश्लेषण को केन्द्र में रखकर, स्पष्टता होती है, वे हैं :

1. निरन्तर विकासोन्मुखता ;
2. सुव्यवस्था, योजनाबद्धता तथा लगभग या न्यूनाधिक एकरूपता (केवल धार्मिक विषयों को छोडकर) ;

3. धार्मिकता तथा सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था; एवं
4. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, जिसने उपरान्त ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा को इसकी अर्थात, भारतीय संस्कृति की स्थायी विशेषता बना दिया।

आर्यों के आगमनोपरान्त, उनका भारत की उस समय की संस्कृति द्रविड संस्कृति से साक्षात्कार हुआ। आर्यों और द्रविडों के मध्य भले ही कितने भी संघर्षो क्यों न हुए हों ? इनमें से एक ने दूसरे के प्रति कितना भी अत्याचार क्यों न किया हो? द्रविड अथवा भारतीय संस्कृति पर कोई आंच नहीं आई। 'अहिंसा' हो या विकासवादी दृष्टिकोण, योजनाबद्ध अथवा सुव्यवस्था एकरूपता या धार्मिकता, भारतीयों के ये सभी संस्कार आर्यों द्वारा अपनाये गए। दूसरी ओर जो संस्कार आर्यजन अपने साथ लाये थे अथवा भारत आगमन पर जो संस्कृति उनके पास थी, जिसमें ज्ञान, दक्षता, चातुर्य सहित अनेक दूसरी श्रेष्ठताएं थीं, का प्रभाव भी यहां के निवासियो के जीवन पर अमिट रूप से पडा। आर्यों तथा द्रविडो के संस्कारो का अभूतपूर्व संगम हुआ। इस संगम या समन्वय ने भारत की संस्कृति का नव–निर्माण किया, चिरकाल तक इसके अस्तित्व हेतु दिशा दी। इसमें भी श्रेष्ठ बात यह थी कि पूर्व के सभी मौलिक संस्कार बने रहे। आर्यों के संस्कारों के प्रभाव से भारतीयों के जीवन में न केवल अनुष्ठानों, तपों और विश्वास की परम्पराएं प्रारम्भ हुई, अपितु ज्ञान के युग का प्रारम्भ भी हुआ। आर्यों के ग्रन्थों, जिनमें वेद प्रमुख हैं, में मानव के जीवन के अनेक पहलुओं, उत्पत्ति, उद्देश्य, लक्ष्य इत्यादि तथा इसी के साथ इस नाशवान जगत और इसके उपरान्त की स्थिती, इन सबके पीछे कार्यरत सत्ता आदि का उल्लेख है। जीवन पद्धति, उपासना, कर्तव्यों, व्यवहारों आदि की चर्चा है। ये वास्तव में ज्ञान का भण्डार हैं और दार्शनिकता की पराकाष्ठता भी। वेदों के रचियता अनेक ऋषि माने जाते हैं, जिनके उच्चारणों को प्राचीन चारण याद कर लेते थे और उपरान्त गाकर सुनाया करते थे। उस समय की शिल्प कला काफी उन्नत थी। यद्यपि हडप्पा काल में भारतीयों में धार्मिकता थी लेकिन उसमें एकरूपता नहीं थी। आर्यों के द्रविड संस्कारों से मिलनोपरान्त ही यहाँ धार्मिक एकरूपता का युग प्रारम्भ हुआ, एक व्यवस्था जिवे 'वैदिक' कहते हैं, की स्थापना हुई। कर्म सिद्धान्त उपनिष्दों में सर्वप्रमुख है। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत में प्रत्येक वस्तु, जो आत्मायुक्त है, का निर्धारण नैतिक विधान से होता है। आत्मा एक शरीर के विनाश के उपरान्त दूसरी काया को ग्रहण करती है। बुरे कर्म को करने वाला विभिन्न योनियों में पुनः जन्म लेता है, लेकिन सदाचरणकर्त्ता, मानव के रूप में उत्थान कर सकता है। कर्म इतने महत्वपूर्ण हैं कि जीव को मोक्षधिकारी, जो कि जीवन का वास्तविकता और अन्तिम लक्ष्य है, बना सकते हैं। वैदिक व्यवस्था, जो द्रविड–आर्य संगमोपरान्त स्थापित हुई, की एक महान उपलब्धि को हम गणतंत्रात्मक व्यवस्था के प्रमाणों में पाते है। कदाचित विश्व को प्रजातंत्र को श्रेष्ठ और अद्वितीय विचारधारा, जिसकी परिधि में आज अधिकांश राष्ट्र हैं, यहीं से प्राप्त हुई। समिति वैदिक काल में जनता की राष्ट्रीय पंचायत थी। जनता को ही राजा को निर्वाचित अथवा पुनः निर्वाचित करने का अधिकार था। समिति का यही प्रमुख कार्य भी था। समिति में अर्थात्, बैठक में समान उद्देश्य एवं समान विचार की कामना, एकता तथा सामंजस्य हेतु स्तुति की जाती थी। विचार–विमर्श के समय समिति में अनुकूल भाषण होते थे, राजनीतिक विषयों पर बहस होती थीं। समिति के अध्यक्ष को इशाना कहते थे तथा राजा स्वयं बैठकों में भाग लेते

थे। 'सभा' अथवा 'नरिश्ता' 'समिति' की सहयोगी संस्था थी और समिति की ही भांति लोकप्रिय थी। दोनों में अन्तर यह था कि जहां समिति में राजनीतिक विषयों पर बहस, चर्चाएं आदि होती थीं, वहीं सभा में मुख्यतः सामाजिक विषय आते थे। सभा एक प्रकार से सामाजिक सम्पर्क एवं उल्लास का मंच थी।

मगध–मौर्य काल आर्थिक विकास, जिसके मूल में कृषि और इससे जुडे उद्योग थे, में महत्वपूर्ण चरण था। अब गंगा की घाटी, जो उर्वर जलोढ भूमि वाली थी, विकास का केन्द्र थी। प्रचुर मात्रा में लौह निर्मित उपकरणों, मुख्यतया हलों की फालों ने कृषि के परिणामों में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया। वह इस रूप में कि उपजाऊ भूमि पर वर्ष में दो या तीन फसलों की कटाई होने लगी। सिंचाई हेतु नहरों और तालाबों का तीव्रता से विकास हुआ। स्वयं शासकीय स्तर से बडी सिंचाई परियोजनाओं का संगठन किया गया। दूसरे, मगध–मौर्य काल में नगरो का भी तीव्रता से विकास हुआ, यद्यपि अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में ही निवास करती थी। यह विकास विशेष रूप से मगध काल में हुआ। वैसे तो उस समय कई नगरों का विशिष्ट शैलीयों में निर्माण हुआ लेकिन सबसे विशाल नगर पाटलीपुत्र, जो समान्तर चतुभुर्ज आकार में बनाया गया, में मेगस्थनीज के अनुसार 570 बुर्ज एवं 60 से भी अधिक नगर द्वार थे; उसका क्षेत्रफल 50 वर्ग किलोमीटर से अधिक था अर्थात् वह सिकन्दरिया से तीन गुना बडा था।

इस समय वैज्ञानिक कोषों, मूर्ति कला, वास्तु, साहित्य एवं लेखन आदि का काफी विकास हुआ।

नागाजुर्न, कालिदास, आर्यभट्ट और आर्यदेव जैसे विद्वान; अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कुरल, पुराण, प्रजापारमिता सूत्र, मेघदूत तथा विभिन्न स्मृतियों जैसी रचनाएं; अजन्ता और सांची मंदिर जैसे निर्माण कार्य; महायान जैसा दर्शन; और अमरावती, मथुरा तथा गान्धार जैसी शैलियों का विकास, यह सब जिस काल में हुआ, उसे संस्कृति के स्वर्णयुग के रूप में स्वीकार किया गया। यह समय था गुप्त वंश के शासकों का।

गुप्त सम्राज्य में लगभग सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई। हस्तशिल्प, धातुशिल्प, धातु ष्दिल्ली का लौह स्तम्भ आज तक भी इस कारण से आश्चर्य का विषय बना हुआ है कि पनय बना हुआ है कि पन्द्रह से भी अधिक शताब्दियां व्यतीत हो जाने के बाद तथा जलवायु की नमी के चलते हुए, उसे आज तक जंग नहीं लग पाया। यहीं नहीं सोने व चाँदी के अतिरिक्त लोहे, सीसे एवं टीन के सुन्दर कार्यों की भरमार भी इस समय में थी। शस्त्रों के निर्माण की कला भी भिन्न ढंग की थी, जिस पर शकों की पद्धति का प्रभाव था। सूती वस्त्र, रेशम उद्योग से निर्मित कार्यों, कृतियों और आभूषणों का निर्यात होता था; ये वस्तुएं विदेशों में बहुत लोकप्रिय थीं। वैसे भी व्यापार कार्य गत समस्त सीमाओं को लांघ चुका था। न केवल देश में ही अपितु भूमध्यसागरीय देशों, पडोसी देशों और अफ्रीका तक जहाज माल को ले जाते थे। पाण्डिचेरी उन दिनों प्रसिद्ध केन्द्र था, जहाँ से लदान होता था।

इस काल में प्रशासनिक सुधार भी हुए; भूस्वामित्व की स्थिति परिवर्तित हुई। भूमि से संबंधित पंजीकरण पद्धति प्रारम्भ हुई और निजीत्व का प्रसार हुआ। बागवानी बहुत फली–फूली। आडू, नाशपाती और अनेक प्रकार की सब्जियों व फलों का उत्पादन प्रारम्भ

हुआ, यद्यपि आम, अंगूर, नारंगी और सन्तरे तथा तटवर्ती क्षेत्रों में नारियल पहले ही बडी संख्या में भारतीयों द्वारा उगाये जाते थे।

हूजों से चालुक्य चोलों तक का समय भारत की राजनीतिक अस्थिरता और विघटन का था; एकता को तोडने का था। केवल हर्षवर्धन के शासन काल, जो अन्यों की अपेक्षा सुदृढ था और जिसका विस्तार भी औरों से अधिक था, को छोडकर शेष समय के भारत की स्थिति इस दृष्टि से अच्छी नहीं थी। यह सही है कि आक्रामकों के रूप में भारत आने के उपरान्त हूण यहां की संस्कृति का अभिन्न अंग बन गए, भारतीयों के संस्कारों को उन्होंने अपना लिया, लेकिन एकता, जो यहां की संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, को चोट पडी। यह एकता आगे भी डावांडोल रही। एकता डांवाडोल रहे, निरन्तर अशान्ति का वातावरण रहे तो विकास पर निश्चित ही उसका प्रभाव पडता हैं वह विकास चाहे आर्थिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो अथवा सांस्कृतिक। ऐसा ही हुआ भी। भारत का सांस्कृतिक उत्थान गुप्त काल के समरूप तो नहीं हो पाया, लेकिन जो श्रेष्ठताएं अपने को जीवित रखने के लिए भारतीय संस्कृति ने सदा के लिए अपनी ली थीं, उनके बल पर यह ठहरी नहीं, उन्नित के मार्ग पर न्यूनाधिक तब भी चलती रही।

अपने समय के विश्व के सबसे श्रेष्ठ जननेता, आन्दोलकारी तथा अहिंसा को देश–काल की परिस्थितियों में ढालकर उसके माध्यम से ध्येय प्राप्तकर्ता महात्मा गांधी भारतीय संस्कृति के भी सबसे बडे प्रतिनिधि थे। यही कारण है कि वे आम और खास को एक साथ जोड सके। वे आत्मबल को भान जनता को करा सके। इसी के साथ, भारतीय संस्कुति के अगले चरण की रूप–रेखा, निश्चित रूप से उन्हीं मौलिक मान्यताओं/मूल्यों के आधार पर, रख सके। इस रूप–रेखा के सार में भारत के लिए वास्तविक स्वराज्य, जिसमें दो प्रमुख स्तम्भ, 'आत्म शासन' और 'आत्मसंयम' भी सम्मिलित हैं।

गाँधीादी युग में महात्मा गाँधी के अद्वितीय नेतृत्व में उच्चतम् स्तर पर कार्यरत दल, जो स्वाधीनता के द्वार तक उनके साथ रहा, में प्रत्येक भारत की एकता, अखण्डता और सांस्कुतिक विरासत का मूर्तरूप था। सरदार वल्लभ भाई पटेल यदि एकता, अखण्डता और ग्रामीण भारत के प्रतीक होने के साथ–साथ दृढ इच्छा वाले व्यक्तित्व थे, तो पंडित जवाहरलाल नेहरू युवा शक्ति के प्रेरणास्त्रोत और निर्पेक्षता के प्रतीक थे। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस यदि स्वाभिमान के प्रतीक होने के साथ ही राष्ट्रभक्तों में राष्ट्रभक्त थे, तो मौलाना अबुल कलाम आजाद साम्प्रदायिक एकता के। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद यदि सौम्यता के लिए जाने जाते थे तो खान अब्दुल गफ्फार खान सादगी और वीरता के लिए सबके प्रिय थे। इसी भाँति सरोजनी नायडू यदि स्नेह की प्रतीक थीं तो विनोबा भावे सेवा और त्याग की मूर्ति थे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भारतीय संस्कृति के मूल्यों में से एक की प्रधानता में अपने पथ पर आगे बढता हुआ दृष्टिगोचर होता था। अन्ततः सभी मूल्य एक–दूसरे के पूरक हैं। इन सभी मूल्यों को यदि आज एक स्थान पर हम मिलाकर देखें तो हमें सहज ही अनुमान हो जायेगा कि उपरोक्त नेताओं के जीवन से बाहर भारतीय संस्कृति नहीं थी।

प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सन् 1947 ईस्वी में भारत की स्वाधीनता के मध्य के लगभग पांच हजार वर्षों की भारतीय संस्कृति की लम्बी यात्रा के अवलोकन से इसकी अनेक सामान्य विशेषताओं तथा इसके मूल्यों चित्र के अनुसार भारतीय संस्कृति :

(क) विभिन्नता में एकता की द्योतक रही है;
(ख) समन्वयकारी है;
(ग) व्यापकताधारक है;
(घ) सहिष्णुता एवं सहनशील की प्रतीक है;
(च) विकासोन्मुख है;

(छ) सर्वकल्याणकारी है, जिसमें इसका ध्येय देश की सीमाओं से आगे निकलकर तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करते हुए, 'वसुधैव कटुम्बकम्' की अवधारणा के अनुरूप आगे बढना है; तथा

(ज) अहिंसा के सर्वोच्च मानवीय मूल्यों को यह सुदृढतापूर्वक पकडे रही है। ना तो भारतीय संस्कृति ठहरी है ना ही पतनोन्मुख हुई हैं।

सन्दर्भ सूची–

(1) कुमार, डॉ. रवीन्द्र, भारतीय संस्कृति के पांच हजार वर्ष, मेरठ : डायनेमिक पब्लिकेषंस (इण्डिया) लि0,
(2) रावत, हरिकृष्ण, उच्चतर समाजषास्त्रीय विष्वकोष, जयपुर : रावत पब्लिकेषंस।